पुरःसरा धामवतां यशोधनाः सुदुःसहं प्राप्य निकारमीदृशम् ।

भवादृशाश्चेदधिकुर्वते रतिं निराश्रया हन्त ! हता मनस्विता॥ ४३।।

अन्वय –

धामवतां पुरःसरा यशोधनाः भवादृशाः सुदुःसहम् ईदृशम् निकारम् प्राप्य रतिम् अधिकुर्वते चेत्, हन्त ! मनस्विता निराश्रया (सती) हता ॥ ४३।।

अर्थ-

तेजस्वियों में अग्रगामी, यश को सर्वस्व माननेवाले आप जैसे शूरवीर अत्यन्त कठिनाई से सहने योग्य इस प्रकार से शत्रु द्वारा होने वाले अपमान को प्राप्त करके यदि सन्तोष करते हैं तो हाय! स्वाभिमानिता बेचारी निराश्रय होकर नष्ट हो गयी ॥४३॥

टिप्पणी-

आप जैसे तेजस्वी तथा यश को ही जीवन का उद्देश्य माननेवाला भी यदि शत्रु द्वारा प्राप्त दुर्दशा को सहन करता है तो साधारण मनुष्य के लिए क्या कहा जाय ? अत: पराक्रम करना ही अब आपका धर्म है। यहाँ अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है।

अथ क्षमामेव निरस्तविक्रमश्चिराय पर्येषि सुखस्य साधनम् ।

विहाय लक्ष्मीपतिलक्ष्मकार्मुकं जटाधरः सञ्जुहुधीह पावकम् ॥४४॥

अन्वय-

अथ निरस्तविकमः चिराय क्षमाम् एव सुखस्य साधनम् पर्येषि (तर्हि) लक्ष्मीपतिलक्ष्मकार्मुकं विहाय जटाधरः सन् इह पावकं जुहुधि ॥४४॥

अर्थ –

आप (यदि अपनी पूर्व तेजस्विता का नहीं धारण करना चाहते और) अपने पराक्रम का त्याग कर चिरकाल तक शान्ति को ही सुख का कारण मानत हो तो राजचिह्नों से चिह्नित धनुष को फेंककर जटा धारण कर लो और इस तपोवन में अग्नि का हवन करो ॥४४॥

टिप्पणी—

बलवानों के लिए भी यदि शान्ति ही सुखदायी हो तो विरक्तों की तरह बलवान् को भी धनुष धारण करने से क्या लाभ है ? उसे फेंक देना चाहिए।